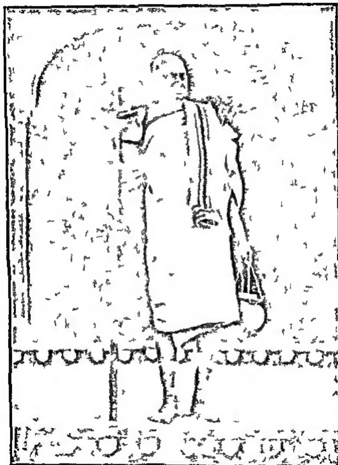


श्री देवगुप्तसूरीश्वर पादपद्मेभ्यो नम

जैन समाजकी वर्तमान दशापर उद्भवित

प्रश्नोत्तर.

आजकल विचार स्वातन्त्र्यका साम्राज्य है, अत जिस ओर द्रष्टिपात होता है उसी ओर अर्थात् सर्वत्र समाज, जातियाँ और धर्मके नामसे आक्षेपों तथा समालोचनाओंकी वृष्टि दीख पडती है। वास्तवमें समालोचना ससारमें बुरी बला नहीं है, प्रत्युत समाज तथा जाति की बुराईयों को निकालनेवाली, मार्गोपदेशिका, एव उन्नत-दायिनी है। जिस समाज में जितने नि स्वार्थ तथा निष्पक्षपात आलोचक है, उतना ही उसके लिये अधिक लाभदायी है। किन्तु अनुभवने इससे प्रतिकूल ही भान कराया वर्तमानमें कुत्सित भावनाओं कों आगे रखकर आलोचक आक्षेपपुञ्जसे कुलोचना किया

करते हैं जिससे समाज को लाभ के बदले अधिकाधिक हानी पहुचती जाती है और क्लेशके कारण समाज अस्तव्यस्त हो गया है।

वर्तमानकालिक जैन समाजकी परिस्थीति की तरफ उपलक द्रष्टिपात मात्रसे नजर दौडाते हुए, जमाने हालका स्वतंत्र विचारक वर्ग, हमारे परमोपकारी प्रात स्मरणीय पूर्वाचार्योंकी तरफ असत्य आक्षेपोंकी वर्षा करते हुए इस प्रकार प्रश्न परंपरा उपस्थित करतें है कि —

(१) श्री रत्नप्रभसूरि आदि आचार्योंने क्षत्रियोंसे जैन जातियां बनाकर बहुत ही बूरा कीया, यदि ऐसा न हुआ होता तो जैन धर्मकी विश्वव्यापकता आजकलकी भांति जैन जाति जैसे संकुचित क्षेत्र में न रह जाती अर्थात् कूपमण्डूकता के भोग न बन जाती ?

(२) श्रीमान् रत्नप्रभसूरिजी आदि आचार्योंने क्षत्रिय जैसे बहादूर—वीर वर्णको तोडकर अनेक जातियों व समुदाय में विभक्त कर दीया, और उस समाजको कायर—कमजोर बनाकर के उसकी सामुदायिक शक्तिको चकनाचूर कर दिया ?

(३) जैन जातिया बनजानेसे ही क्षत्रिय वर्गने जैन धर्मसे किनारा लेलिया ?

(४) जैन जातिया बनानेसे ही जैन धर्म राजसत्ता विहीन हो गया, तदुपरांत जातिया, फिरके, गच्छ और समुदाय आदिमें पृथक् २ परिणत होजानेसे, जैन जैसे सत्य और सन्मार्ग दर्शक धर्मका गौरव नितान्त ही लुप्त प्राय सा हो गया ?

(४) जैन जातियोंका एक ही धर्म होने पर भी जहा रोटी व्यवहार है वहा उनके साथ बेटीव्यवहार न होनेकी सकीर्णता का एक मात्र कारण जैनों का जाति बन्धन ही है ?

उपर्युक्त प्रश्नावलीका प्रस्फोट करनेके पूर्व सब विचारज्ञ महानुभावों को उस कालकी परिस्थिति पट पर विहार करने के लिये हम अवश्य अनुरोध करेंगे। समाजोद्धारक महान् पुरुषोंने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावको दृष्टिपथमें रखकर, समाजोन्नतिके लक्षबिन्दु को पार करनेके उद्देश्य मात्रसे ही समयोचित फेरफार किया था। मनुष्य मात्र को प्रश्न करते समय उस कालकी परिस्थितिका सम्यक् अध्ययन, अभ्यास और विचार विमर्श करके ही कहना उचित है कि किस महान् उद्देशसे पूर्वाचार्योंने यह कार्य प्रारम्भ किया था। उस समय इस वास्तविक फेरफार की कितनी आवश्यकता थी, परिवर्तन का उस वक्त क्या स्वरूप था, कालके प्रभावसे उसकी असली सूरतमें क्या २ विकृतिया हो गयी, आजकी जैन ज्ञातियोंकी यह दशा असली है या परिवर्तनका ढाचा है ? इन बातोंके सपूर्ण अभ्यासित हुए सिवाय उपर्युक्त प्रश्न उत्पन्न होना स्वाभाविक है। मेरी समजमें इतिहास इन उलझनोंकी गुत्थी सुलझानेमें ज्ञानदीपक है। किन्तु खेद का विषय है कि आजके इतिहास युगके जमानेमें हमारी समाज पृथक् पथपर ही जा रही है। उनको अपनी जातिकी उत्पत्ति, उनके उद्देश और गौरवकी तरफ ख्याल करने तकको तनिक भी फुर्सत नहीं है। जैन जातियोंके अगुआ नेताओं को तथा होनहार नवयुवकों को न तो इति-

हममें इतना प्रेम है और न तो इन बातोंकी अन्वेषणाकी ओर अपना लक्ष दोडाते है। फिर भी आप समाजके सुधारक बनकर विचार स्वतन्त्रता में टाग फसाकर, प्राचीन और ऐतिहासिक बातोंके विरोधी बनकर स्वयं शकाशील हो अन्य भद्रिक जनताको अपनी पार्टी में मीलाकर, हठधर्मीसे अपनाही कपोलकल्पित मत अथवा पक्ष स्थापित करनेको उन्नत हो जाते है। क्या इससे समाज-सुधार हो गया अथवा हो जायगा ?

प्रिय वर ! विचार स्वतन्त्रता केवल आज से ही नहीं अपि तु अनादि काल से चली आई है। संसार में जितने मतमतांतर नजर आते हैं, यदि गहरी दृष्टि से विचार किया जाय तो सब विचार स्वतन्त्रता नहीं, पर स्वच्छंदता से ही उत्पन्न हुवे प्रतीत होते हैं। हम विचार स्वतन्त्रताके विरोधी नहिं हैं, किन्तु आजकल कितने ही महानुभाव स्वतन्त्रता के बजाय स्वच्छंदी बन कर सुधार के बदले समाजकी अधोगति में धकेल रहे हैं। ऐसे सज्जनों को अपने संकुचित हृदय को विशाल बना कर, हमारे निम्नांकित विचारों को ध्यान पूर्वक पढे व सुने और उसमें से जितना सत्य प्रतीत हो उतना ही " क्षिरमिवाम्बु मध्यात् " हंसवत् ग्रहण करने को, हम सविनय प्रार्थना के साथ अनुरोध करते है कि-पूर्वाचार्यो के प्रति जो अभाव-मेल है, उस को उन के उपकार नीर से धो कर, भक्ति भाव से स्वच्छ करदें और हृदयकालुष्य को हटा दें। यही हमारे समाज का और अपना सर्वोत्कृष्ट उद्धार और कल्याण मार्ग है।

विश्व का प्रवाह और वर्णव्यवस्था.

आदि तीर्थंकर भगवान् श्रीऋषमदेव जो कि इस अवस-र्पिणी कालापेक्षा जैनधर्म और जगत् में नीति मार्ग प्रचारक आदि पुरुष हैं, उन्होंने क्लेश पीडित, अविद्या अधकार पराभूत युगल मनुष्यों के उद्धार निमित्त असी (क्षत्रिय--धर्म) मसी (वैश्य--धर्म) कमी (कृपक-धर्म) अर्थात् कला कौशाल्य, हुन्नर, व्यापार उद्योग, आदि नीति मार्ग बतलाया कि जिस से ससार अपना जीवन नीति, धर्म और सुखमय व्यतीत कर सकें। यह नीति मार्ग चिरकाल तक एकधारावच्छिन्न चलता रहा और उत्त-रोत्तर ससार की उन्नति होती रही, चारों और शाति का साम्रा-ज्य था। किन्तु यह बात कुदरत से सहन न हुई और " कालो याति चक्र नेमी क्रमेण " यह नियमानुसार कालचक्रने पलटा खाया और काल की विकरालता से उस नीति मार्ग में विशृखलता का प्रादुर्भाव हुआ। शाति और कर्तव्य परायणता भाग गये, अशाति राक्षसीने अपना साम्राज्य जमाना शरु कर दीया। जिस प्रकार आगकी किञ्चित् मात्र चिनगारी शनै २ दावानल का रुप धारण कर लेती है, उस तरह समाज में अशातिने भी क्रमश अपना एकाधिपत्य जमा लिया। पर, किसी भी कार्य से पूर्ण घृणा न हो जाय, तब तक उसका सुधार होना असभव है यह ही हाल हमारे भारतवर्ष का हो रहा था, चारों ओर जनता का चित्कार आर्तनाद कर्णगोचर होता था, प्राणि मात्र अशाति से त्रासित हो सुधार की प्रतिक्षा कर रहा था, किन्तु, सुधार करना किसी साधारण

मनुष्य का काम न था, इस के लिये तो एक दिव्य-शक्ति की परमावश्यकता थी।

प्रकृति का यह एक अटल नियम है कि जब शुक्लपक्ष का चन्द्र अपनी उन्नति करता हुआ परमसीमा तक पहुँच जाता है तब कृष्णपक्ष का आरम्भ होता है, और जब कृष्णपक्ष आखिरी हद को प्राप्त कर लेता है, तब पुन शुक्ल पक्षका प्रादुर्भाव हुआ करता है। यह ही दशा भारत की भी हुयी। भारत उस समय उन्नति के उच्च शिखर पर पहुँच कर, अवनति के गहरे खड्डे में जा गिरा था, किन्तु इस का भी तो उद्धार होना ही था। ठीक उसी समय हमारे पूज्य पूर्व महर्षिपुङ्गवों की (जिन का लक्ष स्व कल्याण के साथ पर कल्याणका भी था) शितल दृष्टि प्राणिव ससार के ऊपर पड़ी-फिर तो देर ही क्या थी ? उन्होंने अधकार कीचड में डूबे हुये समाज-उद्धार के लिये अनेक उपाय सोचे और आखीरी निश्चय किया कि ससार में शान्ति बनी रहे, अतः चार मुख्य-आवश्यक साधनों का आयोजन होना चाहिये। (१) सद्ज्ञान, (२) उत्कृष्ट पुरुषार्थ (शौर्य), (३) पर्याप्त द्रव्य, (४) सेवाभाव। इन चारोंमें से एक के भी न होने से कार्य में सफलता होनी दु साध्य ही नहिं किन्तु असम्भव है। क्यों कि सद्ज्ञान-श्रेष्ट बुद्धि से सद्-असद्, नित्य-अनित्य सार-असार आदि वस्तुओं का वास्तविक स्वरूपक ज्ञान होता रहेगा, उत्कृष्ट पुरुषार्थ या शौर्य से राष्ट्र व समाज का सरक्षण होता रहेगा और दिन व दिन क्रान्ति होगी। पर्याप्त द्रव्य द्वारा देश व समा-

ज की आर्थिक स्थिति मजबूत होगी, और सेवाभाव से उपरोक्त तीनों साधनों को उन के कार्य क्षेत्र में सहायता और सफलता मीला करेगी। इसी में ही संसार का परम कल्याण है।

बस ! उन सुधारकोंने स्वकीय विचारों को कार्यरूप में परिणत कर के " यथा गुणा स्तथैव नामा " इस उक्ति को चरितार्थ कर के जन समुदाय को चार विभागों में विभाजित कर दिया।

(१) सद्ज्ञान द्वारा जनता की सेवा करनेवाला जन समूह ब्राह्मण वर्ण कहलाने लगा (अर्थात् ब्रह्म–परां विद्या–दार्शनिक विचारधारा जानातीति ब्राह्मण)

(२) उत्कृष्ट पुरुषार्थ याने शौर्य द्वारा समाज की सहायता करनेवाला (अपने नाम को चरितार्थ करता हुआ क्षताम्-पीडान्, त्रायते–रक्षति इति क्षत्रिय) समुदाय क्षत्रिय वर्ण के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

(३) द्रव्यार्जन याने पर्याप्त द्रव्य द्वारा संसार का सहायक वर्ग (गोति–रक्षति धनान् इति गुप्त) गुप्त अर्थात् वैश्य कहलाया।

(४) सेवाभाव याने अवकाश आदि से जनता की सेवा करनेवाला जन समुह शूद्र कहलाया क्यों कि जिसे पढने पढाने तथा सिखने सिखाने मे विद्या और कला कौशल नहीं आया और जिस के अन्दर सेवाभाव जागृत पाया उनको इस समूह में मीलाया।

उपर्युक्त चारों वर्णोंकी स्थापना अपनी २ कार्य मर्यादाओंके अनुसार, किसीकी हुकूमतसे नहीं, प्रत्युत सेवाभावसे ही अपने रस करके हुयी थी। उस जमानेमें मेधावी ही किस्मत यह पदपर लगाही जाती थी, उसीका यह प्रबल उदाहरण है। मनुष्यका एक यह भी अटल सिद्धान्त है कि कामके साथ २ यदि हरएक व्यक्ति को कुछ पुरस्कार मिलता रहे तो वह अधिक उत्साह के साथ अपने कार्यमें दत्तचित्त रहता है। यह व्यवहार-कुशलता हमारे पूर्वाचार्योंमें कम न थी। उन्होंने वर्ण विभाग के साथ २ ही योग्य सामग्रीयाँ प्रदान कर दी थी। यह विभूति उन उन वर्णोंको अनुकूल भी थी। ब्राह्मणोंको मान, क्षत्रियोंको ऐश्वर्य, वैश्योंको विलासता और शूद्रोंको निश्चिन्तता इत्यादि। यहां तक कि ब्राह्मणोंके समान किसीको मान नहीं क्यों कि तीनों ही वर्ण उनके साथ आदर सत्कार से पेश आते थे। क्षत्रियोंके बराबर ऐश्वर्य नहीं क्यों कि उनके ही हाथमें राजतंत्र दे रखा था। वैश्यों के बराबर विलास नहीं कारण कि लक्ष्मीदेवीकी कृपा उनपर असीम थी। शूद्रोंके समान निश्चिन्तता नहीं क्यों कि शारीरिक परिश्रमके सिवाय उनको अणु मात्र भी चिन्ता का शिकार कभी भी न होना पड़ता था।

तीनोंही वर्ण, ब्राह्मणोंके अधिकारमें रखते समय एक यह भी शर्त थी कि, ब्राह्मण वर्ग सदैव ऐश्वर्य और विलासता से दूर रहे यानि विरक्त रहे। स्वार्थ लोलुपतावश धनोपार्जन न करे और धनका संग्रह भी न करें। यदि समाजमें कुछ न्यूनाधिक करनेका

काम पड़जावें तो क्षत्रियों द्वारा करावें, न कि स्वयं स्वतन्त्रता पूर्वक करने लग जाय। वर्ण व्यवस्था का उस समय एक यह भी नियम था कि नीचे वर्णवाले उपरके वर्णका कार्य न कर सकें और न उचे वर्णवाले भी नीचे वर्णवालोंका काम करें। अगर जो कर लेवें तो शिक्षाके पात्र समजा जाता था। यदि उचे वर्णवाला नीचे वर्णका काम करने लग जाय तो उच्च वर्णसे पतित मानकर जिस वर्णका काम कीया हो उस वर्णमें समजा जावें। कालान्तर उनकी सन्तानको भी यह ही कार्य करना पड़े और उसी समुहमें उनकी गणना की जावें। इस प्रकार वर्णशृखला और उनके नियमादि बन जानेसे चारों वर्ण अपने २ कर्ममें रत हो गये। इस सुधार-सुव्यवस्थासे जगत्में चारों ओर शान्तिदेवीका साम्राज्य स्थापित हो गया और दुष्ट अशान्ति दुम दबाकर भाग निकली। हरएक समाज अपने उचित कार्योमें लगजानेसे भारतके गौरवका सितारा एक वख्त फिर भी चमकने लगा।

प्रिय पाठक ! उपर्युक्त वार्तासे आपको सम्यक्तया विदित हो गया है कि तीनों वर्ण (क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) अर्थात् सारा जगत् ही ब्राह्मणों के सत्ताधिनथे, और तीनों समाज उनकी आज्ञा का पालन बड़ेही सत्कार और इज्जतके साथ कीया करते थे। ब्राह्मणोंने जब तक निस्वार्थ भावसे, निष्पक्षपात शासन तीनों वर्ण-समाजके उपर चलाया, तब तक शान्ति और सुखका साम्राज्य अस्खलित भावसे चलता रहा। संसारमें जैसे दिन-रात, पाप-पुन्य, शीत-ताप, धूप-छाया, चन्द्र-सूर्य और तेज अन्धकार आदि युगल, घटमा-

सकी तरह एक के बाद दूसरा चक्कर लगाया ही करते हैं उसी तरह शान्ति और अशान्ति, सुख और दुःख भी समयानुकूल अपने २ स्वामित्व जमा लेते हैं। भारतकी असीम–चिरकालीन शान्तिका भी यही हाल हुआ कि भाग्यदेवोंकी कृपालीमें, कालकी क्रूरता, कुरकके प्रकोप अथवा भवितव्यताकी विकृतिमें, स्वार्थान्धता का कीड़ा आ घुसा अहिंसापरमोधर्म से पतित हो मिथ्याधर्मका उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया, स्वार्थ लोलुपता की लिप्सा उनकों सुप्त मनाने लगी। स्वार्थ कीड़ेने विप्रवर्योंकी निष्पक्षपातिता, साधुता, कर्मण्यशीलता, सहिष्णुता और परोपकारिता आदिसद्गुणों का भक्षण कर लिया और ऐश्वर्यके साथ विलासताकी पिपासा बढ़ती ही चली, धन और सपत्तिकी तृष्णा पैदा हुयी, वैभव और स्वार्थका समुद्र उलट आया। फिरतो कहना ही क्या था ? ससारभरके सत्ताकी बाग–डोर तो उनके ही हस्तगत थी, क्षत्रिय लोग तो ब्राह्मण समाजके कठपुतले थे॥ और रिंगलैनेकी तरह जिधर नचावे उधर नाचते थे। वैश्य वर्ग ब्राह्मणोंकी निरकुशता और जुल्मी सत्तासे त्राहि २ पुकार रहे थे बेचारे शूद्रोंकी तो किसीमें गणना भी न थी, घासफूँसकी तरह समझे जाते थे। तीनों वर्ण पर मनमाना अत्याचार करना प्रारम्भ कर दिया, वर्णशृखला छिन्नभिन्न हो गयी, धर्म कर्ममें शिथिलता पड़ गयी–न्यायान्यायका विचार भी न रहा, हिंसामय यज्ञ यागादि की प्ररूपणा शुरु हो गयी, वर्णशकर जातीयाँ पैदा होने लगी और उनके लिये मनमाना पक्षपात युक्त इन्साफ देना ब्राह्मणोंने आरम्भ कर दीया। इतना ही नहीं, किन्तु ऐसे २ ग्रन्थ भी बना डालें कि जीसमें कपोलकल्पित स्वार्थमय, हिंसायुक्त विधिविधान रच दिये

यज्ञ यागादिकी प्रवृत्ति शरु करा दी और उसमें असख्य अबोल प्राणीयों के बलिदानमें ही पुन्यका ठेका दे दीया। अतिरीक्त इसके केइओनें तो ऋतुदानादि में महापुन्य बतलाना शरू कर दीया। कइ एक व्यभिचारीयोंने वाम मार्ग (उलटा मार्ग) जैसे व्यभिचारी ग्रन्थोंकी स्थापना कर दी। ब्राह्मण लोग अच्छी तरह समजते थे और उनको पूर्णतया शका भी थी कि इन ग्रन्थों को सर्व लोग, सर्व कालमें स्यात् ही मानें इसलिये उन्होने उस पर छाप ठोक दी कि यह सब शास्त्र–ग्रन्थ ईश्वर–प्रणीत है। इन शास्त्रों को न माननेवाला "नास्तिको वेद निन्दकः" नास्तिक होगा और उसकी स्वर्गमें गति न रहेगी अर्थात् नर्कमें जाना पडेगा। इत्यादि। ब्राह्मणोंका अत्याचार यहातक बढ़ गया कि चारों ओर हाहाकार मचने लगा, अशान्तिकी भठ्ठियाँ चोतरफ धधकने लगी। भयभीत त्रासग्रस्त जनता एक ऐसे दिव्य महापुरुषकी प्रतीक्षा कर रही थी कि जिनकी कृपासे अशान्ति अन्धकारका नाश हो कर शान्ति प्रकाश हमारें मानसों को प्रकाशित कर दें।

"परिवर्तनशील ससारे मृतः को वा न जायते" समय परिवर्तनशील है। रात्रिके घोर अधकारके बाद सूर्योदय हुआ ही करता है। ससारके अज्ञान तिमिरका नाश होना ही था, अज्ञानान्धकारकी परिसीमा भी हो चुकी थी। ठीक उसी समय भगवान् महावीर देवने अपने देदीप्यमान तेजस्वी स्वरुपकी रश्मिराशिसे, दिव्य अहिंसा प्रधान शासनद्वारा अज्ञानान्धकारपटको हटा कर ज्ञानसूर्य का प्रकाश ससारके कोने २ में फैला दिया।

की दया विभूति से जैन कहलाने का सौभाग्य प्राप्त किया है। आगे चल कर आप अपने अनौचित्य पूर्ण तथा अदूरदर्शीता मिश्रित प्रश्नों का यथोचित उत्तर भी सुन लीजिये और हृदय की शंकासंतति को भी सद्ज्ञान द्वारा दूर कर दीजिये।

प्रश्न—आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि आदिने क्षत्रियोंने जैन जातिया बनाकर बहुत ही बूरा किया, यदि ऐसा न हुवा होता तो जैन धर्मका विश्वव्यापित्व आजकलकी जैन जाति जैसे संकुचित क्षेत्रमात्रमेंही सीमित न रहजाता।

उत्तर—विदित हो कि आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि आदिने क्षत्रिय मात्र को ही नहीं बल्कि तीनों वर्णोंको एकत्रित करके ही "संघ" की स्थापना की थी। उन्होंने आजकलकी जैन जातियां बनाई भी न थीं। किन्तु प्रभाविक, शक्तिशाली, समभावी, उच्च नीचके भेद रहित तथा आदर्शयुक्त "महाजनसंघ" के नामसे समुदायिक बलको एकत्रित किया था। वर्ण व जाति बंधनोंसे मुक्त कर उनके विभक्त शक्ति तन्तुओंको एकत्रित कर "महाजनसंघ" रूपी प्रबल रस्सामें गुम्फित कर, धर्मपवित्र संसारको एकात्मभावी बनाकर उन्नतिके उच्च शिखर चढाये थे। रत्नप्रभसूरिजीने अज्ञानान्धकाररूपी शत्रुको समूल नष्ट किया, जिनसे जैन धर्म तथा संसार का सूर्योदय हुआ। उस संघ के अन्दर भरी हुयी दिव्यशक्ति—विद्युतने सतेज होकर स्वकीय कल्याण के साथ संसारका कल्याण किया। इतना ही नहीं, पर सर्वोत्तम जैन धर्म जो कि संकुचित क्षेत्रमात्र में ही रह गया था, उसको विश्वव्यापी बनानेका दरवाजा

खोल दिया था कि सर्व साधारण जनता जैन धर्म को स्वीकार कर आत्मकल्याण कर सके । न कि पूर्वाचार्योंने धर्म का ठेका किसी एक व्यक्ती जाती व वर्ण को ही दे रखा था कि जिस का दोष पूर्वाचार्यों पर लगाया जाय ?

जरा ज्ञान लोचन से आलोचना कीजीए कि उस जमाना की भद्रिक जनता उन व्यभिचारी कुगुरु पाखण्डियों की माया जाल में फस कर तथा वर्णशङ्कर जातियों में विभक्त हो क्लेश कदाग्रह उच्च नीच का भेदभाव अर्थात् अभिमान के वशीभूत हो अपने शक्ती तन्तूओं को किस कदर नष्ट कर रही थी । यज्ञादि में हजारों लाखों निरपराधि प्राणियों के बलीदान से अधर्म को अपनी चरम सीमा तक पहूचा दिया था । मास मदिरादि दुर्व्यसन से तो मानो नरक का दरवाजा ही खोल रक्खा था । व्यभिचार सेवन में तो उन पाखण्डियोंने स्वर्ग और मोक्ष ही बतला दिया, इतना नहीं पर उन पाखण्डियों के जोर जुलम से चारों और भ्रष्टाचार की भट्ठीयों धधक रही थी जनता में अशान्ति और त्राहि त्राहि मच रही थी ।

ठीक उसी समय आचार्यश्रीने अपने आत्मबल और पूर्ण परिश्रम अर्थात् अनेक कठनाइयों का सामना करते हुए अपने सदुपदेश द्वारा उन भद्रिक जनता को प्रतिबोधदे उन के अज्ञान मिथ्यात्व उच्च नीच के भेदभाव और मिथ्या अभिमान को समूल-नष्ट कर समभावी बना एक सूत्र में गुथित कर महाजन संघ की

स्थापना कर उन पर विधि विधान के साथ ऐसा प्रभावशाली वासत्तेप डाला कि वह सदाचार के जरिये स्वर्ग और मोक्ष के अधिकार बन गये, जिस के फल स्वरूप आज पर्यन्त उनकी परम्परा सन्तान आचार्यश्री दर्शित शुद्ध मार्ग का ठीक अनुकरण कर रही है। इतना ही नहीं पर उन महाजन संघ के नररत्नवीरोंने देश, समाज, और धर्मकी अत्युत्तम सेवाए करअपने नाम से इतिहास पट्ट अलङ्कृत किया, जिस के यशोगान के मधुर स्वर आज भी प्रतिध्वनित हो रहे हैं। इतना ही नहीं पर महाजन संघ की देश सेवा को आज अच्छे अच्छे विद्वान, अर्थात् ऐतिहासज्ञ सज्जन मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं और महाजन संघ की देश सेवा का जो प्रभाव जन समूह पर पड़ा है, यह सब आचार्यश्री का अनुग्रह-कृपा का ही मधुर फल है। महाजन संघ के नररत्न दानेश्वरों के बनाए हुए हजारों आलीशान मंदिर, लाखों मूर्त्तियों, अनेक कुए, तलाव, वावड़ियां मुसाफिर खाने, और दुष्कालादि विकटावस्था में क्रोड़ों द्रव्य व्यय कर अन्न पीड़ित देश भाइयों के प्राण बचाए, इत्यादि यह सब प्रत्यक्ष प्रमाण किसी से छिपा नहीं है। क्या यह आचार्यश्री की पूर्ण कृपा का उत्तम फल नहीं है?

यदि आचार्यश्रीने वह उपकार नहीं किया होता तो क्या वह दुराचार सेवित वर्ग जैन धर्म स्वीकार कर पूर्वोक्त सद्कार्य कर अनन्त पुन्योपार्जन से स्वर्ग मोक्ष के अधिकारी बन सकते? इतना ही नहीं पर उन मिथ्यात्व सेवित महानुभावों तथा उन की परम्परा सन्तान की न जाने क्या गती (दशा) होती?

आप सज्जन बखूवी सोच सकते हो कि आज जो जैनधर्म स्वल्प मात्र अर्थात् जैन जातियों में ही जैन धर्म रह गया, जिस का दोष क्या हम हमारे परमोपकारी जैनाचार्य पर लगा सक्ते हैं ? अपि तु कभी नहीं । कारण आचार्यश्री रत्नप्रभसूरिने न तो आज की भान्ति अलग अलग जातियों बनाई थी और न किसी जातियों को धर्म का ठेका भी दिया था कि अमुक जातियों के सिवाय, कोई भी जैन धर्म को पालन ही नही कर सके ।

वास्तव में आचार्यश्रीने तो भिन्न २ वर्ण व जातियों में विभक्त हो जनता अपने अमूल्य शक्तियों और जीवन नष्ट कर रही थी, उन को अधर्म से मुक्त कर समभावी बना के महाजन संघ की स्थापना कर उन का दिन प्रतिदिन रक्षण पोषण कर वृद्धि करी थी । हम तो आज भी छाती ठोक दावे के साथ कह सके हैं कि जैन धर्म का द्वार प्राणीमात्र के लिए खुला है, किसी भी वर्ण जाति के भेद भाव बिना कोइ भी भव्यात्मा जैन धर्म को स्वीकार कर आत्मकल्याण कर सके हैं, और हम उन के सहायक हैं ।

जो जैन धर्म जातियों मात्र में ही रह गया उन का कारण हमारे पूर्वाचार्य नहीं, पर खास तौर पर हम ही है कारण —

(१) हमारे आचार्योंने उच्च नीच के अभिमान को हटाया था, हमने उन को पुन धारण कर लिया, जिस का ही यह कटुक फल है कि जैन धर्म जैन जातियों मे रह गया ।

(२) हमारे आचार्योंने महाजन संघ की स्थापना कर विशाल भावना से उस का विशाल पोषण और वृद्धि की थी। आज हमारी संकुचित भावनाने उस संघ को तोड फोड कर टुकडे २ कर दिए, और वह भिन्न २ जातियों में विभक्त हो क्लेश कदाग्रह का घर बन कर हमारी अल्प संख्या म बडा भारी सहायक हुआ है।

(३) हमारे पूर्वाचार्यों की दीर्घदृष्टीने हमारा महोदय किया आज हमारी अल्पदर्शीताने हमारा अध पतन किया।

(४) हमारे आचार्यों की परोपकार परायणताने विश्व को अपना बना लिया था, आज हमारी स्वार्थवृत्तिने हमारा सत्यानाश कर डाला। अर्थात् एक ईश्वर के उपासकों में उच्च नीच का भेद भाव पैदा किया है तो एक हमारी स्वार्थवृत्तिने ही किया न की पूर्वाचार्यने।

(५) हमारे आचार्याने भिन्न २ मत–पथ के मनुष्यों को एकत्र कर उनके आपसी सम्बन्ध जोड आपस में प्रेम ऐक्यता की वृद्धि कर जैन बनाए। आज हम एक ही धर्म पालने वाले एक दूसरा के साथ सम्बन्ध तोड के उनको आपस भिन्न समझने लगे इत्यादि अनेक कारणों से हमारी अल्प संख्या रह गई और फीर भी होती जा रही है अर्थात् जाति मात्र म धर्म रह जाने के खास कारण हम ही हैं न कि पूर्वाचार्य। बल्कि पूर्वाचार्यों ने तो हमपर बडा भारी उपकार किया कि आज हम जैसे कहलाने म भाग्यशाली बने हैं।

(२) प्रश्न—श्रीमान् रत्नप्रभसूरीजी आदि आचार्यों ने क्षत्रीय जैसे बहादुर वीर वर्ण को तोड कर अनेक जातियों व समुदाय में विभक्त कर दिया और उस समाज को कायर कमजोर बना कर के उस की सामुदायिक शक्ती को चकनाचूर कर दिया ?

उत्तर—आप पहिले प्रश्न के उत्तर में पढ चूके है कि आचार्यश्रीने न तो किसी वर्ण को तोडा और न उन्होने भिन्न भिन्न जाति ही बनाई थी। उन महर्षियोंने तो भिन्न २ जाति वर्ण में विभक्त जनता को समभावी बनाके महाजन संघ की स्थापना कर उनकी संगठन शक्ती को महान् बलवान् बनाई थी, भिन्न २ जातियो बना के उनकी शक्ति को चकचूर कर देने का दोष आचार्यश्री पर लगाने के पहिले उनके इतिहास को पढ लेना बहुत जरूरी बात है, कारण एक महान् उपकारी महात्मा पर असत्याक्षेप कर वज्रपाप से बच जावें।

वास्तव में आचार्यश्रीने दुराचार सेवित जनता पर दया भाव लाकर के उनके खान पान आचार व्यवहार शुद्ध कर " महाजन संघ " रूपी एक संस्था स्थापित की थी। तत्पश्चात् उस संस्था के लोग श्रीमालनगर से अन्यत्र जाकर निवास करने से लोग उनको ' श्रीमाल ' कहने लग गए। इसी माफिक उपकेशपुर से अन्यत्र जाने से वह ' उपकेश ' (ओसवाल) वंश कहाने लगे, और प्राग्वट नगर से " प्राग्वट ' (पोरवाड) वंश प्रसिद्ध हुए। कालान्तर पूर्वोक्त वंशो में एकेक कारण पाकर भिन्न

भिन्न गोत्र और जातियों बन गई, जैसे—कई तो ग्राम के नाम से, कई व्यापार करने से, कई प्रसिद्ध पुरुषों के नाम से, कई धर्म कार्यों से, कई राज कार्यों से, कई हासी ठट्टा कुतुहल से, इत्यादि एक ही संस्था से अनेक जातियाँ बन गई कि जिनकी गणना करना मुश्किल है पर इन जातियों बन जाने में भी एक गुप्त रहस्य रहा हुआ है वह यह है कि एक प्रान्त में स्थापित हुई संस्थाने अपने तनधन मान प्रतिष्ठा की इतनी उन्नति करली कि वह अनेक शाखा प्रति शाखा रूप में विस्तार पाती हुई वटवृक्ष की भांति भारत के चारों ओर फैल गई इतना ही नहीं बल्कि अपने भुजबल से देश का रक्षण किया और अपनी उदारता से हजारों लाखों क्रोडो द्रव्य खर्च कर देश समाज और धर्म की उन्नति करी। क्या यह कम महत्व की बात है? यह सब हमारे पूर्वाचार्यों की उपदेश कुशलता और कार्य पटुता तथा परोपकार-परायणता का सुन्दर फल है अगर उस संस्था स्थापन करने से ही जैन जातियों में कायरता व कमजोरी आगई मान लि जावे तो उन जातियों की इतनी उन्नति होना स्वप्न में भी कल्पना नहीं हो सकी। यह तो हमें दावा के साथ कहना पड़ता है कि उस जमाना में न तो जैन धर्मोपासक कायर थे और न कमजोर थे पर उस समय जैन जातियो के हुंकार मात्र से भूमि कम्प उठती थी। राजतंत्र और व्यापार प्राय जैन जातियों के ही हस्तगत था जैन जातियों को कायर—कमजोर कहनेवाले सज्जनों को अपक्षपात दृष्टि से उस जमाना के इतिहास को पढ़ना चाहिये। देखिये—

(१) उपकेशपुर नगर का महाराज उपलदेवने जैन धर्म स्वीकार करने के बाद उनके अठाइस उत्तराधिकारियोंने जैन धर्म पालन करते हुवे भी वडी वीरता से राजतंत्र चलाया। उनकी बेटी व्यवहार तो चिरकाल तक राजपुतो (क्षत्रिय) के साथ ही रहा था जिन्होने अपने भुजबल से देशका रक्षण कर जनता की बडी भारी उन्नति की थी. इतना ही नहीं पर उन जैन वीरोने अनेक युद्धक्षेत्र में अपनी वीरता का विजय झुंडा भी फरकाया था उन की संतान आज श्रेष्टिगोत्र और वैदमुता के नाम से शूर-वीरो में मशहुर है इस जाति के नररत्न वीरोंने चिरकाल तक जागीरियों व दीवानपद और फोजमुसफ आदि राज कर्मचार्य व धर्म सेवा में ही अपनी जीवनयात्रा पूर्ण करी थी। मुत्ताजी लाल सिंहजी करणसिंहजी सवाइसिंहजी पृथ्वीसिंहजी हरनाथजी चतुरभुजजी जगमालजी और सुलतानसिंहजी आदि बडे नामी हुवे है—बीकानेर व मेडता के प्रसिद्ध वैदमुतों की वीरता से मुग्ध हो राजामहाराजाओंने उनको कई ग्राम और पैरो में सोना बक्सीस किया था वह आज पर्यन्त वैदमुतों की महत्वता बतला रहा है। जोधपुर के वैदमुत्ता पाताजी और जैतसिंहजी का यश आज भी जीवीत है सोजत के वैदमुत्ता सतीदासजी की सत्यता और स्वामि धर्मिपना प्रसिद्ध है। गेरवा के मुत्ता मयलदासजी की सिंहगर्जना से दुश्मन पलायन हो जाते थे। सिवाणा के वैद मुत्ता ठाकुरसिंहजी और नरनारायण की प्रचण्ड वीरता से मुस-लमान लोग धम्प उठते थे जालोर के वैदमुत्ता तेजसिंह की तीक्ष्ण

तलवारने पठान जैसे अजय लोगों का इस कदर पराजय किया था की उस समय के वीर रसपोषक भाटों के वहियां उनवीर पुरुषों की वीर काव्यों से भरी पडी है जैसे

वैदोंने वरदान । आगेइ सखिया तणो ।
खापिया वेरहखान । तपियों मुत्तो तेजसी ॥ १ ॥

इत्यादि अनेक वीरोंने वीरता का परिचय दे इतिहास पट्टको अलकृत किया–जैसे वह लोग वीर थे वैसे उदार भी थे जिन्होंने लाखों क्रोडों द्रव्य पुन्य कार्यामें व्यय कर अपनी उज्वल कीर्ति को विश्वव्यापी वना दी थी एक समय इस एक वैदमुता जातिके एक लक्ष घरोंसे भारतभूमि विभूषित थी यहाँपर वैद्मुता जातिका किंचित परिचय करवाया है वैसे ओसवाल कोम में हजारों जाति के असख्य नरपुङ्गवोंने अपनी वीरता व उदारता से देश सेवा कर अपना नाम अमर वना दिया था । क्या जैन जातियो के लिये कायर–कमजोर कहनेका कोई व्यक्ति साहस कर सक्ता है। अपितु कभी नहीं ।

(२) वि० स० ६८४ सिन्धपतिराव गोशलभाटी को आचार्य देवगुप्तसूरिने प्रतिवोध दे जैन बनाया वाद उनकी १६ पीढी तक उनका वेटी व्यवहार राजपूतों के साथ रहा इनकी परम्परा सतानों में इतने वीर हुए कि जिनकी सिंह गर्जनामें अजय्य मुसलमान वादशाह भी कम्प उठते थे। आदूशाह, सारंगशाह,

नरसिंह और लुणाशाह विगेरे चडे ही नामी हुए और जिनकी सतान आज लुणावत के नामसे मशहुर है।

(३) वि० स० १०३९ नाडोलाधिप राव लाखणजी के लघु बन्धव राव दुद्धाजी को आचार्य यशोभद्रसूरिने प्रतिबोध दे जैन बनाया बाद माता आसापुरीका काम करनेसे उनकी जाति भण्डारि हुई उनके १४ पीढी तक तो बेटी व्यवहार राजपूतों के साथ ही रहा था, जिन भण्डारि जाति कि वीरता के लिये यहाँ पर विशेष लिखने की आवश्यक्ता और अवकाश नहीं है कारण इनकी वीरता जगत्प्रसिद्ध है तथापि एक उदाहरण यहाँपर लिख देना अनुचित न होगा। जो कि महाराजा अजीतसिंहजीके राजत्वकालमें अहमदाबाद मुसलमानोकि दाडोंमे चला गया था इस पर ७०० घुडसवारों के साथ भण्डारी रत्नसिंहजी को अहमदाबाद विजय करनेको भेजे। भण्डारीजीने वहाँ जाकर अपनी कार्यकुशलता युद्धचातुर्यता और भूजबलसे युद्धक्षेत्रमें मुगलोंके गैमे तो दान्त खट्टे कर दिये कि उनको रणभूमिमे प्राण लेकर भागना पड़ा और भण्डारीजीने अहमदाबाद स्वाधीन कर जोधपुर नरेश का विजयडका बजवा दिया। क्या जैन जातियों कायर-कमजोर थी?

(४) जैसे भण्डारियोंकी वीरता अलौकीक थी वैसे सिंधियोंकी वीरतामें दिल्लिकी बादशाहायत भी कम्प उठती थी सोजत और जोधपुरके सिंधियो की वीरताको लिखी जाय तो एक स्वतत्र ग्रन्थ बन जाय हालहीमे सिंघीजी इन्द्राराजजी फतेराजजी

और वच्छराजजी मारवाडका इतिहासमें बडे ही मशहुर है क्या जैन जातियें कायर थी ?

(५) मुनोयत—जोधपुर के महाराजा रायमलजीके सतान मोहनजीने विक्रम की चौदहवी शताब्दीमें जैन धर्म स्वीकार किया जबसे उनकी सतान मुनोयत जाति के नामसे मशहुर हुई—इस जातिकि वीरता कुच्छ अलौकिक ही है जैसलमेर कीसनगढ और जोधपुरके मुनोयतोंकी वीरतारा वीर चारित्र सुनतेही कायरो के निर्बल हृदय मे शौर्य का सचार हुवे विगर कभी नहीं रहता है इस जातिकी वीरताके लिये एक उदाहरण भी काफी होगा जो कि मुनोयत वीर नैणसी और सुन्दरदास यह दोनो वीर जोधपुर राजाके दीवान और फोजमुशफ थे जब दरबारने औरंगाबाद पर चढाई कीथी उस समय दोनो वीर साथमे थे और युद्धक्षेत्रमें अपनी वीरता का पूर्ण परिचय भी दीया था पर कितनेक लोग द्वेष इर्षाके मारे दरबारको कुच्छ और ही सोचादि कि दरबार उन दोनो वीरो से नाराज हो उन पर एक लक्ष मुद्रिकाए का दड कर दिया इसपर वह निर्दोष वीर युगल निडरतासे कह दिया कि—

लाख लखारां सपजे । अरु वड पीपल की साख
नटिया मुता नैणसी । तांबा देण तलाक ॥ १ ॥
लेसों पीपल लाख । लाख लखारा लावसी,
तांबो देण तलाक । नटिया सुन्दर नैणसी ॥ २ ॥

इन वीर वाक्योपर मुग्ध हो दरबारने उनको दडसे मुक्त

कर पुन अपना लिया ऐसे तो इस जातिमें अनेक वीर हो गये पर हालहीमे मेहताजी विजयसिंहजीका जीवन पढिये कि वह आद्योपान्त वीरताका रगसे ही रगा हुआ है।

इनके सिवाय मचेती वाफणा करणावट समदडिया गद्-इया पारख चोपडा चोरडिया लोढा सुराणा हथुडीया राठोड सिसोदीया परमार चौहान सोलखी बोथरा तातेड बडजूरा आदि हजारों जातियों के असख्य नरवीरोंकी वीरताका चरित्र लिखा जावे तो एक महाभारत सदश ग्रन्थ बनजावे

जब हम गुजरातके जैन वीरोंकी तरफ दृष्टिपात करते है तब तो हमारे आश्चर्यकी सिमा तक भी नहीं रहती है। कारण गुजरातके राजतत्र चिरकाल तक जैनजातियोंने बडी वीरतासे चलाया इतना ही नहीं पर उनने वहा का राज किया कहदिया जाय तो भी अतिशययुक्ति न होगा–वीर काम्ब पातक, नानींग, लेहरी, विमलशाह, उदाई, पेथड, मुजाल, सतु महेता, वाहड मत्री और वस्तुपाल तेजपाल इत्यादि इनकि अलौकिक वीरता इतिहासके पृष्ठो पर आज भी वीरगर्जना कर रही है। फिर भी क्या जैन जातिये कायर और कमजोर थी ?

जैन धर्म केवल जैन जातिया का ही नहीं था पर पूर्व जमाना मे इस पवित्र धर्म के उपासक बडे बडे राजा महाराजा जैसे राजा प्रश्नजीत, चेटक, उदाई, अनगपाल, चन्द्रपाल, चण्ड प्रद्योतन, श्रेणक, कोणक, चन्द्रगुप्त आशोक, विन्दुसार, कुनाल,

महाराजा सम्प्रति, महामेघवाहन चक्रवृति, महाराजा खारवेल, चूवसेन, सल्यादित्य, वनराज चावडा, महाराजा आम, अमोघवर्ष, धर्मपाल, देवसेन और कुमारपालादि सैंकडो राजाओंने अपने जैन धर्म का बडी योग्यता से रक्षण पोषण कर उन का उन्नत बनाया था और आज जो जैन जातिया जैन धर्म पालन कर रही है वह भी प्राय सब क्षत्रिय वश म ही पैदा हुई है और इन जातियों के पूर्वजोने भारत का राजतत्र बडी कुशलता से चलाकर राजपूत होने का परिचय भी दिया था।

भारत का राजतत्र जहाँतक जैन जातियों के हस्तगत रहा था वहाँतक भारत के चारो और शान्ति का साम्राज्य बरत रहा था और लक्ष्मीदेवी की पूर्ण कृपा से देश म दालिद्रता का नाम निशान तक भी नहीं था अथात् देश तन धन से बडा समृद्धिशाली था यह सब जैनो की कामकुशलता सिन्धीकुशलता और रणकुशलता का उज्जल दृष्टान्त है तत्पश्चात जैसे जैसे जैन जातियों से राजतत्र छीना गया वैसे वैसे देश में अशान्ति फैलती गई क्रमश आज भारत विदेशियो की बेडीया म जकडा हुवा पराधिनता का दम ले रहा है साथ मे दालिद्रतान अपना पग पेसारा करना सरु कर दिया।

जैन जातिया ज्या ज्या राज कार्यों मे पृथक होती गई त्या त्या उन लोगोंने व्यापार क्षेत्र म अपने पैर बढाते गये। जल थल रास्ते देशविदेश मे खुब व्यापार कर उन लोगोंने लाखो क्रोडो नहीं पर अर्बो खर्वो रूपैये पैदा किये। यह कहना भी अतिशय-

युक्ति न होगा कि उस समय भारत का व्यापार प्रायः जैन जातियों के ही हस्तगत माना जाता था व्यापार के जरिये उन लोगोंने अपनी व देश की खुब उन्नति करली थी बात भी ठीक है कि व्यापार एक देशोन्नति का मुख्य कारण है जिस देश में व्यापार की उन्नति है वह देश धन धान्यादि से सदैव हरानरा रहता है भारत सदैव से व्यापार प्रधान देश है फिर भी जैनो की व्यापार कुशलता सरलता और प्रमाणिकताने तो उस से कई गुणावृद्धि करदी इतना ही नहीं पर जैन जातियोंने व्यापार द्वारा भारत में लक्ष्मी की इतनी तो रलछेल कर दी और अन्योन्य देशो की लक्ष्मी भी भारत पर मोहित हो अपनी वरमाला भारत के कण्ठ में पहरा के-भारत को ही अपना निवास स्थान बना लिया, जैन जातियोंने जैसे राजतंत्र चला के देश सेवा कर सौभाग्य प्राप्त किया था वैसे ही वैपार की उन्नति कर देश सेवा का यश प्राप्त करने में भाग्यशाली बनी थी।

जैन जातियोंने व्यापार में असंख्य द्रव्योपार्जन कर केवल मोजमजहा में ही नहीं उड़ा दिया था साथमे लक्ष्मी की चञ्चलता भी उन से छीपी हुई नहीं थी न्यायोपार्जित द्रव्य को स्वपर कल्याण कार्यो में व्यय करने की भावना उन लोगों की सदैव रहा करती थी यही तो उन दूरदर्शी महाजनो की महाजनता और बुद्धिमत्ता है। और उन लोगोने किया भी ऐसा कि, शत्रुंजय, गिरनार आबु तारगा सुलपाक अतरीक्ष मक्सी कुम्बरिया और राणकपुरादि पवित्र स्थानोंपर लाखो क्रोडो द्रव्यों और राजों कार्य-

खर्च कर धर्म के स्थभरूप दिव्य जिनालयो की प्रतिष्ठा करवाई जिस से धर्म सेवा के साथ उन्होंने भारत की सौल्पश्ला को भी जावित प्रधान करने का शोभाग्य प्राप्त किया। जैसे उन को धर्म सेवा मे प्रेम था वैसे ही वह देश और देश भाइ की सेवा करना अपना परम कर्तव्य समझते थे और इसी कर्त्तव्यपरायणता का परिचय देते हुवे असख्य द्रव्य व्यय कर हीन, दीन दु खियों का दु ख निवारणार्थ अनेक कुँवे तलाब वावडियों मुसाफरखाने दानशालाओ औषधशालाओ पाणीकी पौ और बडे बडे काल दुष्कालो में अन्न पीडित देशभाइयों को अन्न प्रदान कर उन का आशार्वाद सपादन किया था इतना ही नहीं पर मुसलमानो के जुल्मी राज में कर टेक्स के लिये साधारण जनता को अनेक वार बन्धीवान कर लेते थे उस निकृष्टावस्था में भी जैनोंने असख्य द्रव्य से उन देशभाईयों को प्राणदान देकर अपना कर्त्तव्य अदा किया जिस दानेश्वरो मे जगडुशाहा जावडशाहा देशलशाहा गोशलशाहा समरशाहा श्यामाशाहा भैशाशाहा भेरूशाहा रामाशाहा साढशाहा खेमादेदाणी सारगशाहा ठाकरशी नरनारायण विमलाशाहा और वस्तुपाल तेजपाल विशेष प्रसिद्ध है उन दानेश्वरो के मधुर यशोगान आज भी कर्णगोचर हो रहा है अगर जैन जातियो कायर कमजोर होती तो यह शोभाग्य प्राप्त कर सकी ?

अगर जैन जातिया कायर कमजोर होती तो विक्रम पूर्व ४०० वर्ष से विक्रम की सोलहवी शताब्दी तक क्षत्रियादि वीर-पुरुष जैन धर्म को ग्रहन कर ओसवाल ज्ञाति में कदापि सामिल

नहीं मिलते, जैन जातियो मे क्या तो राजकर्मचारी क्या व्यापारी सभी वीरता धैर्यता सत्याता और शौर्यता कि कसोटी पर कसे हुवे थे उन के हाथ नपुसको कि भ्राति अस्त्र शस्त्र विहिन कभी भी नहीं रहते थे वह अपने तन धन जन और धर्म का रक्षण स्वय ही आत्मशक्ति और भूजवल से ही किया करते थे न की दूसरो की अपेक्षा रखते थे फिर समझ मे नहीं आता है कि जैन जातियों को कायर कमजोर बतला कर हमारे परम पूजनिय पूर्वाचार्यों का अनादार क्यों किया जाता है ?

जैन धर्म का अहिंसा तत्व जितना उच्च कोटिका है उतना ही यह विशाल है पर उन को समझने के लिये इतनी बुद्धि होना परमावश्यक है। जैन मुनियों के लिये सर्व चराचर प्राणि-योंकी रक्षा करना उन का अहिंसाव्रत है तब गृहस्थों के लिये अहिंसाव्रत की मर्यादा रखी गई है अर्थात् वह किसी निरपरा-धि जीवों को तकलीफ न पहुँचावे पर अन्यायि दुराचारी और अपराधि को दंड देना व सग्राम मे उनका सामना करना और प्राणदंड देना गृहस्थों के अहिंसाव्रत का बाधक नहीं समझा गया है कारण अनेक राजा महाराजा जैन धर्म का अहिंसाव्रत पालन करते हुए भी रणभूमि में अनेक अपराधियों को प्राणदंड दिया है जिन से उन के अहिंसा व्रत को किसी प्रकार कि बाधा नहीं पहूँची थी अतएव जैन जातियों कायर कमजोर नहीं प्रत्युत शूरवीर है जैन धर्म का खास सिद्धान्त पुरुषार्थ प्रधान है आत्म-शक्तियों को विकाश में लाने के लिये क्रियाकाण्ड उन के साधन है

आत्मशक्तियां का विकाश होना ही वीरता है और इस के लिये जैन जातियां का सदैव प्रयत्न होता रहता है फिर जैन जातियों को कायर कमजोर बतलाना यह अज्ञान नहीं तो और क्या है ?

जैन धर्म के सब तीर्थंकर पवित्र क्षत्रिय जैसे विशुद्ध वीरवंश में अवतार धारण किया और उन्होंने दुनियों की कायरता और कमजोरियों को समूल नष्ट करने को वीरता का ही उपदेश दिया इतना ही नहीं बल्कि उन्होंने वीरता में ही मोक्ष बतलाया था तदानुसार उन की परम्परा सतान में अनेक आचार्य हुए उन सबने विक्रम की सोलहवीं शताब्दी तक तो एक ही धारावाही वीरता का ही उपदेश दिया तत्पश्चात् कलिकाल कि कुरता से केइ मतमतान्तरों का प्रादुर्भाव हुवा और कितनेक अनभिज्ञ लोग जैन धर्म के अहिंसा तत्वकी विशालता को पूर्णतया नहीं समझ के बिचारे भद्रिक लागों को केवल दयापालो दयापालो का उपदेश दे उन वीर जातियों के हृदय से वीरता निकाल ऐसा तो सस्कार डाल दिया कि वह लाग अपने तन धन और धर्म के रक्षणार्थ अस्त्र शस्त्र रखते थे और काम पडने पर दुश्मनो का दमन करते थे वह विध्वा के चुडियों कि माफि तोड फोड के फेंक दिये । और अपने आचार व्यवहार में भी इतना परावर्तन करदिया जिस से दुनियों को यह कहने का अवकाश मिल गया कि जैन जातियों कायर कमजोर और उन का आचार व्यवहार अनेक दोषो से दोषित है अर्थात गन्धीला है इस अनुचित दया का यह फल हुवा कि उस समय से नया जैन बनना बिलकुल ही

बन्ध हो गया और स्वच्छन्दता का उपदेश के जरिये जैन जातियों में अनेक क्लेश कदाग्रह पैदा होने से कुसम्पने अपना सुब जोर जमा लिया आज जितना कुसम्प जैन जातियों में है उतना शायद ही किसी अन्य जाति में होगा ?

बडी खुशी की बात है कि वीरता के विरोधियों के अनुयायियों को भी आज जमाना की हवा लगने से उन्होंने केइ स्थानों पर गुरुकुलवालादि सस्थाओं स्थापन कर समाजमें वीर पैदा करने कि आशा से शारीरिक व मानसिक विकास के साथ कसरत और शस्त्र विद्या का अभ्यास करवा के अपने पूर्वजो की भूलमें सुधारा करने का प्रयत्न कर रहे है अगर साथ ही में जो आचार व्यवहार और इष्ट में परावर्तन हुवा था उस को भी सुधार लिया जाय तो जो उन्नति सो वर्ष में नहीं कर सके वह केवल दश वर्षो में ही हो सकेगा और जैन जाति पर कायरता व गन्धीला आचार का लाछन लागा है वह भी दूर जावेगा। -

वास्तव में न तो जैन जातियों कायर है न कमजोर है न उन का आचार व्यवहार गन्धीला है प्रत्युत जैन जातियों बडी शूरवीर और सदाचारी हैं जिस की साबुती के लिये प्रश्न का उत्तर कि आदि से अन्त तक विस्तृत सख्या में प्रमाण लिख दिये गये है।

(३) तीसरे प्रश्न में जो क्षत्रियोंने जैन धर्म से किनार कर लिया इत्यादि परन्तु खास कर के तो इन का कारण उपरलिख दिया है कि सब से जैन जातियों पर अनुचित दया का प्रभाव पडा और

सदाचार में परावर्तन हुवा उसी रोज से क्षत्रियोंने जैनधर्म से किनारा ले लिया अर्थात् नये जैन होना बन्ध हो गये और दूसरा यह भी कारण है कि अन्य धर्म में खाना पीना रहन सेहन भोगविलास की स्वच्छता है अर्थात् सब तरह की छुट है और जैन धर्म का मुख्य सिद्धान्त वैराग्यभाव पर निर्भर है यहा इन्द्रियों के गुलाम नहीं बनना है पर इन्द्रियों को दमन करना पडता है विषयभोग विलास से विरक्त रहना पडता है इर्षा द्वेष अभिमान क्रोध लोभादि आन्तरिक वैरियो पर विजय करना है ससार से सदैव निवृति अर्थात् ससार में रहते हुवे भी जल कमल कि माफीक निर्लेप रहना पडता है इत्यादि जैन धर्म का कष्टमय जीवन ससार लुब्ध जीवों से पालन होना मुश्किल ही नहीं पर दुःसाध्य है इसी कारण से क्षत्रिय लोगोने जैन धर्म से किनारा लिया है न कि जैन धर्म का तत्व-ज्ञान को समझ के। जैन धर्म का सिद्धान्त इतना तो उच्च कोटि का है कि जिसको अवलोकन-अध्ययन करनेवाले असख्य पूर्विय और पश्चात्य विद्वान मुक्त कण्ठ से जैन धर्म के सिद्धान्तो की प्रशसा कर रहे है।

इतना होने पर भी हमारे जैनाचार्य जैन धर्म का तत्वज्ञान समझाने के लिये आज भी मैदान में कुद पडे तो पूर्ण विश्वास है कि वह जैन धर्म का खुब प्रचार कर सके जैसे कि पूर्वाचार्योंने किया था कारण आज गुण गृहाही और तत्व निर्णय युग में सत्य को ग्रहन करनेवालों कि सख्या दिन ब दिन बढती जा रही है। पर हमारा दुर्भाग्य है कि आज हमारे आचार्यो को व मुनि पुङ्गवों

के गृह क्लेश और आपुस कि विरोधता के कारण पुर्णतही कहा है कि वह अपने जैन धर्म के तत्वज्ञान को आम पब्लिक में जैनेत्तर भाइयों को समझा के उन के अन्तः करण को जैन धर्म की और झुका दे।

हम मे अविनय अभक्ति न होजा वास्ते हम नम्रतापूर्वक और दुःख के साथ कहते है कि आज कितनेक आचार्य या मुनि महाराजोने गुर्जर प्रान्त को तो अपनि विलायत ही बना रखी है विशेषतः अहमदाबाद सुरत पाटण बडोदरा और पालीताणा को ही पसद किया जाता है गुजरात में सेंकडो मुनि विचरने पर भी गामडो में उपदेश के अभाव सेंकडो नहीं पर हजारों जैन जैन धर्म मे पतित हो जैनेतर समाज में चले गये और जा रहे है। पर उन की परवाह किस को है फिर भी अपने बचाव के लिये यह कह दिया जाता है कि हम क्या करे उन्ह के कर्मो की गति है उन के भाग्य में ऐसा ही लिखा है बस यह ही वाक्य मारवाड मेवाड मालवादि प्रान्तों के लिये समझ लिया जाय कि जहा मुनि विहार के अभाव से धर्म की नास्ति होती जा रही है असख्य द्रव्य से बनाये हुवे जिनालयों कि आशातना हो रही है अन्य धर्मियों के उपदेशक, उन पर अपना प्रभाव डाल रहे है जो जैन धर्म के परमोपासक भक्त थे वह ही आज जैन धर्म के दुश्मन बनते जा रहे है इत्यादि क्या इन सब बातें का दोष हम हमारे पूर्वाचार्यो पर लगा सक्ते है ? नहीं कभी नहीं। -

तीसरा यह भी एक कारण है कि पूर्व जमाना में जैनेत्तर

लोग जैन धर्म को स्वीकार करते थे तब उन को सब तरह कि सहायता दि जाति थी उन के साथ रोटी बेटी व्यवहार बड़ी खुशी के साथ किया जाता था और उन को अपना स्वधर्मि भाई समझ बड़ा आदर सत्कार किया जाता था इस वात्सल्यता को देख अन्य लोग जैन धर्म को बड़ी शीघ्रता से स्वीकार किया करते थे आज हमारी जैन समाज का कलुषीत हृदय इतना तो संकुचित हो गया है कि आज हमारे मन्दिरों और उपाश्रयों के दरवाजे पर स्वयं नोटिस लगाया जाता हुआ है कि जैनेत्तर लोगों को मंदिर उपाश्रय में पग देने का भी अधिकार नहीं है अगर कोई जैन तत्त्वज्ञान कि ओर आकर्षित हो जैन धर्म स्वीकार कर ले तो उन के साथ रोटी बेटी व्यवहार की तो आशा ही क्या ? जैनेत्तरो के लिये तो दूर रहा पर खास जैन धर्म पालने वालि जातियों जो कि अपने स्वधर्मि भाई है पूर्व जमाना में किसी साधारण कारण से उन के साथ बेटी व्यवहार बन्ध हो गया था और वह अल्प संख्या में रह जाने से बेटी व्यवहार से तंग हो जैन धर्म को छोड़ रहा है पर उपता के ठेकेदारों में उन स्वधर्मि भाइयों क साथ बेटी व्यवहार करने कि उदारता कहां है चाहे वह धर्म से पतित हो जा तो परवाह किस को है । फिर भी बड़ी बड़ी डिंगें हांकते है कि जैन जातियें बनाने से क्षत्रियोंने जैन धर्म से किनार ले लिया परन्तु यह दोष आप की संकीर्णता का है या पूर्वाचार्यों का ? भलो क्षत्रिय तो दूर रहा पर ओसवाल, पोरवाड, श्रीमाल, वगैरह तो एक ही खान के रत्न है पर उन के साथ रोटी व्यवहार होने पर भी बेटी व्यवहार क्यों नहीं किया

जाता है इसी दु:ख के कारण तो गुजरात में केइ छोटी छोटी जातियें जैन धर्म का परित्याग कर अन्य धर्म को स्वीकार कर लिया और उन की ही संतान आज जैन धर्म मे कट्टर शत्रुता रख अनेक प्रकार से नुकशान पहुचा रही है। प्रियवर ! क्षत्रियोंने जैन धर्म से किनार ले लिया इस का कारण पूर्वाचार्यों कि सघ सस्था नहीं किन्तु जैन समाज कि हृदय संकीर्णता ही है।

(४) जैन जातियें बनाने से जैन धर्म राज सत्ता विहिन हो गया तदुपरान्त जातिये गच्छ फिरके आदि में अलग २ पड जाने मे जैन धर्म जैसा सत्य और सन्मार्ग दर्शक धर्म का गौरव प्राय लुप्तसा हो गया ?

उत्तर—अब आप को याद दीलाना न होगा कि पूर्वाचार्योंने अलग २ जातिये नहीं बनाई किन्तु अलग अलग वर्ण जातियों में विभाजित जनता को एकत्र कर ' महाजन सघ ' कि स्थापना की थी अगर थोडी देर के लिये मान भी लिया जाय कि जातियें बनाने से ही जैन धर्म राज सत्ता विहिन हो गया तो क्या आप यह बतला सक्ते हो कि राज सत्ता सयुक्त धर्म में फिरके जातिये और समुदायों का अभाव है ? क्या राजसत्ता धर्म में क्लेश कदाग्रह कुसम्प नहीं है ? अर्थात क्या वहाँ शान्ति का साम्राज्य दृष्टि गोचर हो रहा है ? अगर ऐसा न हो तो यह दोष हमारे पूर्वाचार्यो पर क्यो ? यह तो जमाना कि हवा है वह सब के लिये एक सारखी होती है।

सत्य और सन्मार्ग दर्शक जैन धर्म प्राय लुप्त सा हो जाने का कारण हमारे पूर्वाचार्य और उन का संघ संगठन कार्य कभी नहीं हो सक्ता है कारण उन्होंने तो सैंकडो कठनाइयों का सामना कर के भी मरणोन्मुख गया हुवा जैन धर्म का उद्धार कर। जीवित प्रदान किया। अगर सत्य कहा जाय तो वह सब दोष अपना ही है और इस दोष का कारण अपनी बेपरवाही-कमजोरी, प्रमाद और हृदय कि सकीर्णता है कि आज सत्य जैन धर्म सिवाय उपाश्रय के किसी विद्वानों के कानो तक पहुचाने का तनक भी कष्ट नहीं उठाया अगर जैन धर्म के प्रचारक आज भी कम्मर कस कर तय्यार हो जाय तो जैन धर्म का फिर से राष्ट्री धर्म अर्थात विश्व व्यापि धर्म बना सक्ते है पर लम्बी चौडी बातें हांकनेवालो के अन्दर इतनी हिंमत और पुरुषार्थ कहाँ है ?

फिरके गच्छ और समुदाये अलग २ होने का कारण जैन जातिये नहीं पर साधारण क्रियाकाण्ड है तथापि उन सबका तत्व ज्ञान एक ही है राज सत्ता विहिन होने का कारण भी जैन जातियें नहीं पर इन का खास कारण तो हमारे आचार्यो देव का उपाश्रय ही है कि वह अपने उपाश्रय से बहार जा के जैन तत्व ज्ञान-फिलासफी का प्रचार करना चिरकाल से बंध कर रखा है इतना ही नहीं पर बडे बडे राजा महाराजो और अनेक विद्वान् राज कर्मचारी वगैरह जैन धर्म का तत्वज्ञान समझने कि जिज्ञासा करने पर भी उन कों समझावे कौन ? कारण कितनेक तो मुनि खुद भी तत्वज्ञान से अनभिज्ञ है और कितने को कि पीच्छे इतनी

यादि व्याधि और उपाधि लगी हुई है कि वह अपने बन्धन के पड़दे से बहार तक भी नहीं निकल सके है और कितनेक अपने मानपूजा और गृह क्लेश रूपी किचडमें फसे हुवे पडे है तब दूसरी तरफ शुष्क ज्ञानी और बाह्य क्रिया काण्डमें धर्म समझने-वाले का परिभ्रमन विशेष सख्या में हो रहा है, उन की क्रिया प्रवृति रेहन सेहन का असर जैनो पर कितना ही प्रभाव क्यो न पडा हो पर जैनेत्तर लोगोंने तो उन की क्रिया प्रवृति पर यह निर्णय कर लिया कि जैन धर्म का सिद्धान्त शायद यह ही होगा कि मैले कुचिले रहना स्नान नहीं करना, वनस्पत्यादि का त्याग करना, मन्दिर मूर्त्ति पूजना में पाप मानना घरो से या बजार से धोवा धावा का पाणी ला कर पीना और किसी राजा राणी कि कथा को राग रागणियो दोहा ढाल चोपाइ से गा के सुना देना इत्यादि बातो को ही जैन धर्म के तत्त्व समझ रखा है क्या इन भ्रम पूर्ण मन्तव्य का समूल नष्ट करने के लिये किसी भी आचार्यने पब्लिक में या राजा महाराजाओ कि सभा में आ कर अपना सर्वोत्तम जैन धर्म का तत्वज्ञान को समझने का प्रयत्न किया है जैसे कि पूर्वाचार्योने अपना सम्पूर्ण जीवन ही इस पवित्र कार्यों में पूर्ण कर दिया था

जरा आंख उंचा कर देखिये पुर्वाचार्योने महाजन संघ कि स्थापना समय से ले कर विक्रम कि तेरहवी शताब्दी तक तो जैन धर्म को एक राष्ट्रीय धर्म बना रखा था बाद गच्छ और मतो का भेद से जैसे जैसे संकीर्णता का ओर बढता गया वैसे वैसे जैन

धर्म राजसत्ता विहिन बनता गया। इसमें जैन जातिये बनाने वाले आचार्यों का दोष नहीं है, दोष है जैन समाज की सकुचित वृति का अगर उस को आज ही हटादि जाय तो फिर भी जैन समाज की आहुजलाली हो सकती है।

(५) प्रश्न—जैन जातियो का एक ही धर्म होने पर भी जहाँ रोटी व्यवहार है वहाँ उन के साथ बेटी व्यवहार न होने की संकीर्णता का खास कारण जैन जातियो का बाध न हीं है ?

उत्तर—क्या आप को पूर्ण विश्वास है कि इस कुप्रथा को आचार्यश्रीने ही चलाई थी कि तुम एक धर्मोपासक होते हुए भी आपस में रोटी व्यवहार हो वहाँ बेटी व्यवहार न करना ? अगर ऐसा न हो तो यह मिथ्या दोष उन महान् उपकारी पुरुषों पर क्यो ? वास्तव में तो आचार्य रत्नप्रभसूरिजीने क्षत्रिय ब्राह्मण और वैश्यो का भिन्न २ व्यवहार और उच्च नीचता के भेद भाव को मीटा के उन सबका रोटी बेटी व्यवहार सामिल कर 'महाजन सघ' कि स्थापना करी थी और उन का आपस में यह एक व्यवहार चिरकाल तक स्थाई रूप में रहा भी था कालान्तर उन एक ही सस्था की तीन साखा रूप तीन टुकडे हो गये जैसे उप केशवश, श्रीमालवश और प्राग्वटवश। यह केवल नगर के नाम से वश कहलाया था नकी इनका व्यवहार प्रथक् २ था इतना ही नहीं पर उन के बाद सैंकडो वर्षे तक मास मदिरादि कुव्यसन सेवी राजपुतादि को प्रतिबोध दे दे कर उनका खानपान आचार व्यवहार शुद्ध बना के पूर्वोक्त महाजन सघ और उन की साखाओ में

सामिल मिलाते गये और उन के साथ रोटी बेटी व्यवहार भी खुला दील से करते गये। इस हृदय विशालता के कारण ही हमारे पूर्वाचार्य और समाज अग्रेसरोने समाजोन्नति में अच्छी सफलता प्राप्त की थी जो कि सरू से लाखो कि तादाद में थे वह क्रोडों की सख्या तक पहुंच गये।

शिलालेखों से पत्ता मिलता है कि विक्रम की इग्यारवी शताब्दी तक तो ओसवाल पोरवाड और श्रीमालो के आपसमे बेटी व्यवहार था और वशावलियों तो विक्रम की सोलहवी शताब्दी तक पुकार कर रही है इस वात्सल्यता से ही जैन जातियों का महोदय हुवा था और इसमे मुख्य कारण हमारे पूर्वाचार्य और समाज नेताओं कि हृदय विशालता ही थी

कालान्तर उन जाति अग्रेसरो के मस्तकमें ईर्षा–मत्सरता का एक जबर्जस्त किडा आ घूसा जिस के जरिये प्रत्येक साखा के अग्रेसरों के हृदय मे अभिमान पैदा होने लगा। ऐश्वर्यता और ठकुराईरूपी मद ने उन्ह को चारों ओर से घेर लिया इसका फल स्वरूपमें एक साखा के नेताओं के साथ दूसरी सारवा के अग्रेसरो का वैमनस्य हुवा तब एकने कहा कि तुम पोरवाड हो दूसराने कहा तुम श्रीमाल हो तीसराने कहा तुम ओसवाल हो इस क्षुद्रवृति की भयकरता यहाँ तक बढ गई कि ओसवालोने पोरवाड को कह दिया कि हम तुमको बेटी नहीं देगें पोरवाडोने श्रीमालो को कह दिया की हम तुम को कन्या नहीं देंगें इत्यादि फिर तो था ही क्या जिस २ प्रान्तोमे जिन २ सारवाओ कि प्रबल्यताथी

उन २ अभिमानियोंने अपनि सत्ता का इस कदर दुरूपयोग करना सरू कर दिया कि जो अपने स्वधर्मियों के साथ चिरकाल से रोटी बेटी व्यवहार चला आया था जिसको बन्ध करने में ही अपना गौरव समझ लिया इतना ही नहीं बल्कि जिन आचार्योंने प्रथक २ वर्णो-जातियों मे विभाजित जनता को एक भावी बना के उनका आपस में सबन्ध जोड दिया था और वह चिरकाल से आज प्रथक् प्रथक बन गया और एक दूसरों को आपस मे भिन्न समझने लग गये। इस कुसम्प के जन्मदाता सरू से तो समाज के अभिमानी अग्रेसर ही थे बाद मे तो यह चेपी रोग देश, प्रान्त, ग्राम और घरघरमें फेल गया और दो चार पीढियें वितजानेपर तो उनके ऐसे संस्कार दृढ हो गये कि हम आपसमे कभी एक थे ही नहीं अर्थात् हम सदैव से अलग ही थे यह भिन्नता यहाँ तक पहुँच गइ कि एक दूसरा से घृणा तक भी करने लग गये तथापि हमारे आचार्यो कि कार्यकुशलता से उनके रोटी व्यवहार एक ही रहा इस का मतलब यह होना चाहिये कि उन आचार्योंने यह सोचा होगा कि आज इनके आपस मे वैमानस्य है तथापि अगर रोटी व्यवहार सामिल रहेगा तो कभी फिरसे विशाल भावना आनेसे तुटा हुआ कन्या व्यवहार पुन चलु हो जायगा ? शायद उन महर्षियों के अत्युत्तम विचार इस समय प्रेरणा कर रहा हो तो ताजुब नहीं है।

एक महाजन संघरूपी संस्था तुट कर तीन विभाग में विभाजित हो गई और उन तीन टुकडो से आगे चलकर अनेक

खण्ड खण्ड हो गये और वह ग्राम वगैरेह के नाम से अलग २ जातियों के रूप मे परणित हो एक दूसरे को प्रथक् २ समझने लग गये। इस जमाना मे रोटी बेटी व्यवहार बन्ध कर देना तो मानो एक बच्चो का खेला सदृश हो गया था इतना ही नहीं पर एक ही जाति में जैसे मुत्सद्दी लोग व्यापारियों को कन्या देने में सकीर्णता बतलाते हुवे अभिमान के हाथीपर चढ गये थे और भी दशा—बीसा—पचा अढायादि इतने तो टुकडे हो गये थे कि जिस की सख्या देख हृदय भेदा जाता है

इतना होनपर भी उस समय जैनो कि तादाद क्रोडो कि सख्या मे थी और प्रत्येक जथ्थामें लाखो क्रोडो कि सख्या होनेसे उनको यह अनुचित कार्य भी इतना असह्य नहीं हुवा कि जीतना आज है।

इस कुप्रथाने न्यातिं जाति में ऐसे तो सजड सस्कार डाल दिया कि एक जाति का मनुष्य किसी दूसरी जाति कि कन्या के साथ विवाह कर ले तो उस को जाति बहिष्कृत के सिवाय कोइ दूसरा दड भि नहीं दिया जाता था जिसका एक उदाहरण यहॉपर बतला देना अनुचित न होगा ? यह उदाहरण उस समय का है कि जिस समय स्वस्वजातिमे कन्या व्यवहार होने की कुप्रथा अपनी प्रबल्यता को खुब जमा रही थी, अर्थात् विक्रम की चौदहवी शताब्दी की यह जिक्र है। कि ओसवाल ज्ञातिके आर्यगौत्रिमें एक बडा ही धनाढय और धर्मीष्ट लुणाशाह नाम का महाजन था उसने पूर्व सस्कार प्रेरित एक महेश्वरी कन्या से विवाह कर लिया इस-

पर ओसवाल ज्ञाति के अग्रेसरोने लुणाशाहा को ज्ञाति बहार कर दिया, ठीक उसी समय नागोर से श्रीमान सारंगशाहा चोर डियाने निजद्रव्य से अपने संघपतित्वमें एक बड़ा भारी और समृद्धशाली संघ निकाला वह क्रमश चलते हुवे एक गूढ़ नगर के किनारे बड़ी विशाल और मनोहर वावडि तथा सुन्दर गुलजार बगेचा को देख अर्थात् सर्व प्रकारसे सुविधा समझकर उसे रात के लिये वहाँ ही निवासकर दिया वावडि और बगेचा कि अत्युत्तम भव्यता देख संघपतिने नागरिको कों पुच्छनेसे पत्ता मिला कि यह वावडि व बगेचा याकित पथी-मुसाफरो के विश्रामार्थ इसी नगरमे रहनेवाला लुणाशाहा नाम के साहुकारने निज द्रव्यसे बनवा के अनंत पुन्योपार्जन किया है यह सुनते ही संघपति खुश हो लुणाशाहासे मिलने कि गरजसे आमन्त्रण भेजा उन दानेश्वरी को अपने पास बुलवाया और धन्यवाद के साथ उनका बड़ा भारी आदर सत्कार किया। लुणाशाहा भी संघपति का धर्म स्नेहसे आकर्षित हो अपनि तरफसे भोजन का आमन्त्रण किया कुच्छ देर तो आपसमें मनुहारो हुई आखिरमे लुणाशाहा का अति आग्रह देख संघपतिकों लुणाशाहा का स्वामि वात्सल्य को स्वीकार करनाही पड़ा। लुणाशाहाने भोजन कि इतनी तो अलौकिक तय्यारिये करवाई कि उन सबको लिखना लेखनीकें बहार है भोजन समय श्री संघके लिये स्वर्ण और रूपा के थाल कटोरियों इतनी तो निकाली कि जिसको देख संघपति आदि आश्चर्य में डुब गये और विचार करने लगे कि १००

थाल अनेक कटोरियो केवल सोना की है और रुपै के थाल लोटो कि तो गणती भी नहीं है तो इस के घरमें अन्य द्रव्य तो कितना होगी क्या लक्ष्मीदेवीने अपनि वरमाला लुणाशाहा के गलेमे डाल इसको ही वर पसद किया है अस्तु। भोजनकि पुरसगारी होने के पश्चात सघपतिने अपने साथ भोजन करने के लिये लुणाशाहा को आमत्रण किया। इसपर सत्यवादी लुणाशाहाने साफ कह दिया कि मैं आपके साथ भोजन नही कर सक्ता हु स घपतिने उसका कारण पुच्छा। लुणाशाहाने विगर सकोच कह दिया कि मैं महेश्वरी कन्याके साथ विवाह किया इस कारणसे ज्ञातिने मुझे जाति बहिष्कृत कि सजा दि है इत्यादि यह सुनते ही सघपति के क्षुधापिपासित हृदयमें बडा ही दु ख पैदा हुवा और सोचने लगा की ओहो आश्चर्य यह कितना दु ख का विषय है कि एक साधारण कारण को लेकर ऐसा नररत्न का अपमान कर देना भविष्यमे कितना दु खदाई होगा कहा तो अदूरदर्शी लोगो कि उच्छृंखलता और कहाँ लुणाशाहा कि धैर्यता गाभिर्यता सघपतिने भोजन भी नहीं किया और जाति अग्रेसरों को बुलवा के मधुर वचनो से समजाया कि महेश्वरी कोइ हलकी जाति नहीं है ओसवाल महेश्वरी एकही खानके रत्न है उनका आचार व्यवहार, खानपान अपने सदृश ही है और उनके साथ अपना भोजन व्यवहार आमतौरपर खुला है फिर समाजमें नहीं आता है कि पूर्व सस्कारो से प्रेरित हो लुणाशाहाने महेश्वरी कन्यासे विवाह कर लिया तो इसमे इतना कोनसा बुरा हो गया कि जिसको जाति

से बहार कर दिया ? मेरा ख्यालमे तो आप सज्जनो को ऐसा अनुचित कार्य करना ठीक नहीं था पर खेर अब भी इसका सुधार हो जाना बहुत जरूरी है और भविष्य में इसके फल भी अच्छा होगा इत्यादि संघपति के कहनेका असर उन जाति अग्रेसरोपर हुवा तो सही पर उनने अपना हटको साफ तौर से नहीं छोडा इस लिये संघपतिने अपनि कन्या की सादी लुणाशाहा के साथ कर दि इस विशाल भावनाने उन जाति नेताओ पर इतना असर किया कि वह संघपति के हुकम को सिरोद्धार कर लुणाशाहा के साथ जातिव्यवहार खुला कर दिया इस रीति से संघपतिने अपने हृदय कि विशालता उदारता से लुणाशाहा के महत्व में और भी वृद्धि कर उनको साथ ले आप गिरिराजकी यात्रा के लिये संघ के साथ प्रस्थान कर दिया।

इस उदाहरणसे आपको भली भाति रोशन हो गया होगा कि इस अनुचित वरतनने साधारण बात पर समाजमें किस कदर क्लेश कदाग्रह फेला दिया था कहाँ तो लुणाशाहा जैसे को ज्याति बहिष्कृति करनेवालो कि सकीर्णता और कहाँ जाति हितैषी—दूरदर्शी संघपति कि हृदय विशालता कि जिन्होंने निज कन्या दे कर संघमें शांति स्थापन की।

क्या कोई व्यक्ति यह कहनका साहस कर सके है कि एक धर्म-पालन करनेवालि जैन जातियों में जहा रोटी व्यवहार है वहां बेटी व्यवहार न होने का कारण जैन जातियों व पूर्वाचार्य है ? अपितु

हरगीज नहीं। इन सब दोषों का कारण तो हमारी जैन समाज का सकुचित हृदय और सकीर्ण वृत्ति ही है कि जिसके जरिये जैन समाज दिनप्रतिदिन अधोगति को पहुँच रहा है।

सज्जनों! वर्तमान जैन समाज कि पतनदशा देख अदूरदर्शी लोगोंने आचार्यश्री रत्नप्रभसूरि आदि पूर्वाचार्यो पर मिथ्या दोष लगा के अपनि आत्मा को कृतघ्नता का जबरपापसे अधोगति मे डालने का प्रयत्न किया है उन महानुभावो पर हमे अनुकम्पा अर्थात् दया आ रही है इसी कारण उन अनुचित प्रश्नों का समुचित उत्तर इस निबन्ध द्वारा दिया गया है। जिस को आद्योपान्त खुब ध्यान पूर्वक पठन पाठन करने से आपको ठीक तौर पर रोशन हो जायगा कि—

(१) न तो आचार्य रत्नप्रभसूरिने अलग २ जातिये बनाई थी जैसे कि आज दृष्टिगोचर हो रही है।

(२) न आचार्यश्रीने जो महाजन सघ स्थापन कीया था, उनको कायर और कमजोर बनाया था।

(३) न आचार्यश्रीने जैन धर्मको राजसत्ता विहिन ही बनाया

(४) न आचार्यश्रीने गच्छ फिरके समुदाये बनाई थी

(५) न आचार्यश्रीने कहा था कि तुम एक धर्मपालन करते हुए भी कन्याव्यवहार करने मे सकीर्णता को धारण कर लेना

आचार्य श्री रत्नप्रभसूरि आदि पूर्वाचार्योंने जो कुच्छ किया वह ठीक सोच समझके जैन धर्मकि उन्नति के लिये ही किया था और इस उत्तम कार्य कि उस समय बडी भारी आवश्यक्ता भी थी और जहाँ तक उन महर्षियों के निर्देश किये पथ पर जैन समाज चलता रहा वहा तक जैन समाज कि दिन ब दिन बडी भारी उन्नति भी होती रही थी इतना ही नहीं पर जैन जातियों भारत में सब जातियो से अनेकगुणा चढवढके जहुजलाली भोगव रही थी जबसे आचार्यश्री प्रदर्शितपथ से प्रथक् हो मन घटित मार्ग पर पैर रखना प्रारभ किया था उसी दिन से एक पिच्छे एक एव अनेक कुरुढियोंने जैन समाज पर अपना साम्राज्य जमालीया जिसके जरिये उन्नति के उच्च सिखरपर पहुची हुई जैन जातियों क्रमश आज अवनीतिकी गेहरी खाडमे आ गिरी है उन कुरुढियों को हम आगे के प्रबन्धमे ठीक विस्तारसे बतलाने का प्रयत्न करेगें। अगर उन हानीकारक कुरुढियों को जैन समाज आज ही जलाञ्जली दे दे तो कलही आप देख लिजिये जैन जातियों का उज्वल सतारा फिर भी पूर्वकी भाति चमकने लग जावे इत्यालम्

ॐ शान्ति ३ ।।